विरोध और विद्रोह का कवि : नागार्जुन

डॉ. प्रियंका मिश्र

यह सत्य है कि कविता का लोक के साथ गहरा सम्बन्ध है। हिन्दी ही नहीं किसी भी भाषा की कविता में लोक का कोई–न–कोई रूप हमेशा विद्यमान रहता है। आधुनिक हिन्दी कविता में नागार्जुन की कविताओं में लोक का जैसा रंग दिखाई देता है वह तत्कालीन अन्य कवियों की कविताओं में उतना नहीं चढ़ पाया जितना नागार्जुन की कविताओं पर चढ़ा है। इसीलिए नागार्जुन की कविताओं में व्याप्त संवेदनात्मक सहजता तत्कालीन समाज और उसकी लोक–संस्कृति को अपनी कविताओं के द्वारा सुरक्षित रख पाने में समर्थ रही इसीलिए आधुनिक युग में नागार्जुन की कवितायें अन्य कविताओं की भीड़ में भी अलग से पहचानी जा सकती हैं।

नागार्जुन की कविता की रेन्ज अत्यन्त व्यापक है। घर–परिवार, गाँव, राष्ट्र, जाति, धर्म, वर्ग, समुदाय, जीव–जन्तु इत्यादि इन सभी विषयों पर नागार्जुन की लेखनी खूब चली है। किन्तु इन विषयों पर नगार्जुन की कलम पारम्परिक ढंग से नहीं बल्कि नवीन और आधुनिक दृष्टिकोण से चली है, जिससे इन विषयों को नवीन गरिमा और महत्व की प्राप्ति हुई है।

यदि किसी विषय या प्रसंग पर नागार्जुन असहमत होते तो उसका तीव्र विरोध बड़े सहज ढंग से किया करते थे। उनका यह विरोध उनकी कविताओं में यत्र–तत्र देखा जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर वे विरोध के साथ विद्रोह करने से भी नहीं घबराते थे। जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन में भाग लेने के कारण उनके द्वारा की गई जेल–यात्रा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

नागार्जुन का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही अपने आप में विरोध और विद्रोह की धधकती ज्वाला है। यह ज्वाला शोषकों का विध्वंस कर नवीन सृष्टि का निर्माण करना चाहती है जिसमें सारी दुनिया समभाव से जी सके। ऐसे कवि बहुत कम हुए हैं जिनकी कविताओं को पढ़कर तत्कालीन परिवेश की जाँच–पड़ताल करने को मजबूर होते हैं तथा तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियों की ज्वलंत समस्याओं पर पुनर्विचार करते हैं। नागार्जुन इसके अपवाद हैं। उनकी कविताओं में उस समय के समाज का यथार्थ और तत्कालीन परिवेश की झलक सहज ही दिखाई देती है। उनकी कविताओं को पढ़ते हुए तत्कालीन समाज स्वतः ही परिलक्षित हो उठता है।

साहित्यिक दृष्टि से नागार्जुन मूलतः प्रगतिवादी कवि हैं एवं राजनीतिक दृष्टि से देखा जाए तो वे मार्क्सवादी एवं साम्यवादी विचारधारा के वाहक दिखाई देते हैं। इसीलिए नागार्जुन की कविताओं पर इन विचारधाराओं के प्रभाव के कारण सामाजिक जीवन का कटु यथार्थ–चित्रण दिखाई देता है। जब नागार्जुन अपना रचनाकर्म कर रहे थे उस युग में एक ओर सामाजिक जीवन पर मार्क्सवाद और साम्यवाद के प्रभाव के चलते विरोध और विद्रोह के स्वर समाज और साहित्य दोनों में उठ रहे थे वहीं दूसरी ओर गाँधी के अहिंसा के सिद्धांत का प्रभाव भी कई साहित्यकारों की रचनाओं में दिखाई दे रहा था। लेकिन नागार्जुन गाँधी के अहिंसावाद का समर्थन करने के बजाए शोषण और शोषकों के विरुद्ध अपने अधिकारों के प्रबल संघर्ष और क्रांति का खुले तौर पर समर्थन करते दिखाई देते हैं।

नागार्जुन का समूचे काव्य–संसार में तत्कालीन व्यवस्था के प्रति विरोध एवं विद्रोह का स्वर अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचता दिखाई देता

है। एक ओर तो शोषण और अन्याय के विरुद्ध के विरुद्ध उनकी कविताओं में विद्रोह के स्वर में जिस तरह का पैनापन है वह उनकी कविताओं को तीखी धार की तरह बना देता है। वहीं दूसरी ओर शोषितों के प्रति सहानुभूति और भावनात्मक जुड़ाव की अभिव्यक्ति उनके संवेदनशील रूप को भी अभिलक्षित करती है। तत्कालीन सत्ता, व्यवस्था और पूँजीवाद का विरोध उनकी कविताओं में आक्रोशपूर्ण ढंग से निरंतर होता रहता है। नागार्जुन साम्राज्यवाद, सम्प्रदायवाद और जातिवाद के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने इस विरोध को केवल साहित्यिक आन्दोलन के माध्यम से ही अभिव्यक्त नहीं किया वरन् साहित्य के साथ–साथ उन्होंने इसे जन–आन्दोलन का स्वरूप प्रदान किया। सम्प्रदायवाद का विरोध करने के लिए उनकी दृष्टि में जन–आन्दोलन सबसे अचूक अस्त्र है।

नागार्जुन का दौर हिन्दी साहित्य में शोषकों के शोषण से आहत किसान, मजदूर और निम्न वर्ग के सामाजिकों के यथार्थ जीवन का दौर था। नागार्जुन देख रहे थे कि देश का निम्न वर्ग शोषित है और वह अभावों की चक्की में पिस रहा है। देश की गरीब और निरीह जनता को भरपेट भोजन नहीं मिल पा रहा है। दूसरी ओर पूँजीवादी और उच्च वर्ग भोग–विलास में लिप्त है। नागार्जुन का कवि मन इससे आहत हो रहा था इसीलिए नागार्जुन ने युगीन–यथार्थ एवं समसामयिक चेतना को अपनी कविता का विषय बनाया। उनका कहना था –

' जमींदार है, साहूकार है, बनिया है, व्यापारी हैं।

अन्दर–अन्दर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी हैं। '[1]

तत्कालीन समाज में पूँजीवादियों के इस दोहरे चरित्र और व्यवहार को नागार्जुन भली–भांति समझ चुके थे। इसीलिए वे इसका निरंतर विरोध करते हैं। अमीर और गरीब के बीच बढ़ती सामाजिक विषमता की खाई कवि को व्यथित करती है। आज जिस तरह से हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था चंद पूँजीपतियों के हाथ का कठपुतली बन गयी है उसी को लेकर नागार्जुन के ज़हन में कवि सवाल उठे होंगे। इसीलिए वे पूँजीवाद और राजनीति के आपसी गठजोड़ के पीछे के सच पर आक्रोशित होकर कवि कहते हैं –

'खादी ने मलमल से अपनी साठ–गाँठ कर डाली है।

बिड़ला टाटा डालमिया की तीसों दिन दीवाली है।

जोर जुलूम की आँधी चलती बोल नहीं कुछ सकते हो

समझ न पाता हूँ कि हुकूमत गोरी है या काली है।[2]

राजनीति और पूँजीवाद के इस नए गठजोड़ के कारण ही समाज शोषण का शिकार रहा है। राजनीति की बिसात पर बैठकर खेलने वाले राजनीतिज्ञों के लिए किसान, मजदूर और निम्न वर्ग के लोग प्यादे से अधिक की हैसियत नहीं रखते थे। राजनीतिज्ञों और पूँजीपतियों की आपसी मिलीभगत द्वारा गरीबों का खून चूसा जा रहा है। नागार्जुन पराधीन भारत में ऐसे ही सामाजिकों की आवाज उठाकर उनकी सामाजिक स्वाधीनता को स्वरांजलि देते हैं। वरिष्ठ आलोचक मैनेजर पाण्डेय के कथनानुसार – **''नागार्जुन भारतीय मनुष्य की स्वाधीनता के कवि हैं। उनके सम्पूर्ण काव्य–संग्रह में भारतीय समाज में मौजूद पराधीनताओं की विभिन्न स्थितियों की पहचान है और स्वाधीनता के लिए संघर्ष की आकांक्षा और वास्तविकता की अभिव्यक्ति भी .....।''**

नागार्जुन अपनी कविताओं के माध्यम से तत्कालीन राजनीति पर जिस तरह का करारा व्यंग्य प्रहार किया है वह अतुलनीय है। उनकी राजनीतिक बोध वाली कविताओं में उनकी

व्यंग्योक्ति इतनी अधिक पैनी है कि प्रत्यक्षतः वह पाठक को विचार करने के लिए बाधित करती है। 'पैने दांतों वाली' कविता में उनका यह राजनीतिक व्यंग्य कितना प्रखर है यह स्पष्ट है –

'धूप में पसर कर लेटी है

मोटी–तगड़ी, अधेड़ मादा सुअर

जमना किनारे

मखमली दूबों पर

पूस की गुनगुनी धूप में

पसर कर लेटी है

यह भी तो मादरे–हिन्द की बेटी है

भरे पूरे बारह थनों वाली।'[3]

नागार्जुन की अधिकांश कवितायें सामाजिक चेतना से परिपूर्ण हैं। उनकी कविताओं में आम सामाजिक की आशा–आकांक्षा, दुःख, पीड़ा, अभाव एवं आम आदमी की वेदना को अभिव्यक्ति मिली है। विशेष रूप से दलितों के प्रति समाज में पनपती जातिगत नफरत और उनके उत्पीड़न के प्रति नागार्जुन की सहानुभूति सदैव रही। उन्होंने अपनी कविताओं में दलितों और निम्न जातियों के लोगों के प्रति उच्च वर्ग द्वारा किए जाने वाले भेदभाव के विरोध प्रबल शब्दों में किया। 'हरिजन गाथा' कविता में कवि ने उलितों की स्थिति और उनके शोषण, दमन और उत्पीड़न का जैसा मार्मिक और यथार्थ चित्रण किया है वह भीतर तक हिला देने वाल है। इस दमन के कारण कवि के सब्र का बाँध टूट जाता है और विद्रोह के स्वर उनकी कविता के माध्यम से उभरते हैं –

'दिल ने कहा – दलित माँओं के

सब बच्चे अब बागी होगें

अग्निपुत्रा होंगे वे, अन्तिम–

विप्लव में सहभागी होंगे।'

नागार्जुन अपने समूचे काव्य में यथार्थ का एकदम नग्न चित्रण करते हैं। वे उन कवियों में से हैं जो कभी विपरीत परिस्थितियों में भी विचलित नहीं हुए बल्कि मुश्किल परिस्थितियों में भी उन्होंने उनका सामना करते हुए पीड़ित और शोषित वर्ग के दर्द और उसकी आह को अपने शब्दों के माध्यम से आम सामाजिक तक पहुँचाया। उस दौर में कविता में सत्य की अभिव्यक्ति जैसे एक अपराध थी। शासन के इर्द–गिर्द झूठों और चापलूसों का जमावड़ा लगा रहता था। लेकिन नागार्जुन जमीन के कवि थे और जमीन पर रहकर उन्होंने उसकी मिट्टी की सुगन्ध को अपने भीतर तक सहेज रखा था। इसीलिए नागार्जुन समूचे शासन–तंत्र की नग्न सच्चाई को आम सामाजिक के सामने लाते हुए कहते हैं –

' सपने में भी सच ना बोलना, वरना पकड़े जाओगे।

भैचया लखनऊ दिल्ली पहुंचो मेवा मिसरी पाओगे।

माल मिलेगा रेत सको यदि गला मजूर किसानों का

हम मरभुक्खों से क्या होगा, चरण गहो श्रीमानों का।'[4]

अपने अदम्य साहस और हिम्मत के कारण ही नागार्जुन 'नागार्जुन' थे। शासन की तंत्र व्यवस्था की पोल–खोल का जैसा साहस नागार्जुन ने अपनी कविताओं में दिखाया, उस समय के किसी अन्य कवि की कविताओं में ऐसा साहस मिल पाना असम्भव है। 'ढोल की पोल' कविता में तो जैसे कवि ने समूची व्यवस्था की बखिड़ा उधेड़ कर ही रख दी।

नागार्जुन इसलिए आम आदमी के कवि नहीं थे कि उन्होंने आम आदमी की आवाज को अपनी कविता के माध्यम से विराटत्व तक पहुँचाया बल्कि उनकी कविताओं का प्रधान नायक आम आदमी ही होता था। आम आदमी की प्रतिष्ठा के लिए ही नागार्जुन ने अपनी कविताओं का सहारा लिया। उनका लक्ष्य इसी आम आदमी को समाज में उसकी पहचान दिलाना था। 'खुरदुरे पैर' कविता में तो इस 'आम आदमी', 'आमजन' या 'साधारण आदमी' के व्यक्तित्व को कवि ने जैसा रूप प्रदान किया है वह हिन्दी कविता में आम आदमी के लिए एक आदर्श स्थापित करता है।

गाँव, गली, घर, मुहल्ले और आम आदमी के बीच रहकर कवि ने इन्हीं को अपनी कविताओं का विषय बनाया है। उनकी लोक–दृष्टि में उनके आस–पास का जीवन–संसार बसा हुआ था। अपने आस–पास की अभिव्यक्ति के लिए उनके पास उसी आम–आदमी की भाषा ही थी। भूख से बिलखती मानव जाति के करुण वर्णन में कवि ने जैसा शब्द चयन किया है वह अतुलनीय है। ऐसे में अन्य जीवों के विशेषणों को प्रतीक रूप में लाकर मानव जाति की पीड़ा को पराकाष्ठा तक लाने का जो कार्य नागार्जुन ने किया है उसका समतुल्य मिलना असम्भव है। यथा –

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास।

कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास।

कई दिनों तक लगी भीतर पर छिपकलियों की गश्त।

कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त। [5]

नागार्जुन की खासियत इस बात के कारण भी है कि वे अपनी रचनाओं में केवल व्यवस्था और व्यवस्थापकों का ही विरोध नहीं करते वरन् काव्य की सदियों से चली आ रही परम्पराओं का भी उन्होंने विरोध किया है। परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार – **" आज़ादी के बाद हमारे यहाँ एक खास पश्चिमी शैली का रुग्ण आधुनिकतावाद प्रतिष्ठित हुआ, जिसके चलते एक जड़हीन परजीवी मानसिकता विस्तार पा सकी।** "[6] शायद नागार्जुन इस परजीवी मानसिकता को भारतीयता के अनुकूल नहीं पा सके। इसीलिए उन्होंन भारतीय भावनाओं और संवेदनाओं के लिए लोक और रागात्मकता से समन्वित शैली को ही अपने काव्य के अनुरूप माना। इस अद्‌भुत समन्वय का एक वर्णन दृष्टव्य है –

'कर गई चाक

तिमिर का सीना

ज्योति की फाँक

यह तुम थी

सिकुड़ गयी रग–रग

झुलस गया अंग–अंग

बना कर ठूंठ छोड़ गया पतझार

उलँग असगुन–सा खड़ा रहा कचनार

अचानक उमगी डालों की सन्धि से

छरहरी टहनी

पोर–पोर में गये थे ठूसे

यह तुम थीं।'[7]

ऐसी कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए नागार्जुन के पास प्रकृति और प्रकृति के रंगों में रँगी भाषा से बेहतर ओर क्या हो सकता था!

नागार्जुन ने विरोध–प्रदर्शन के लिए व्यंग्य का जो चटकदार मसाला अपनी रचनाओं में भरा है वह तत्कालीन राजनीतिज्ञों, पूँजीपतियों और

उद्योगपतियों के मुँह पर करारे तमाचे की तरह लगता है। 'चना जोर गरम' में वे भ्रष्टाचारी स्वार्थी और अवसरवादी लोगों की पोल खोलते हुए तीखा व्यंग्य करते हैं –

'चना है मसालेदार

खाइए भी तो यह सरदार

मिलेगा परमिट बारम्बर

मिलेंगे सौदे सभी उधार

नया हो जावेगा घर बार

कि लदलद कर आवेगी कार।'[7]

ऐसे अवसरवादियों को नागार्जुन देशद्रोहियों की श्रेणी में रखते थे। उनकी दृष्टि में सत्ता पर आसीन नेता जिस तरह से गाँधी का नाम बेचकर अपनी तिजोरी को भरने पर तुले हैं वह देश की अस्मिता के साथ खिलवाड़ नही ंतो ओर क्या है। इन नेताओं के चरित्र को उजागर करते हुए कवि कहता है –

'बेच बेचकर गाँधी जी का नाम

बटोरो वोट

बैंक बैंलेन्स बढ़ाओ

राजघाट पर बापू की वेदी के आगे –

अश्रु बहाओ।'[8]

सम्पूर्ण भारत में व्याप्त धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार, लूट–खसोट से नागार्जुन अत्यन्त दुखी थे। उनका कवि हृदय चीत्कार कर उठता है और पूरे भारत भर से लोहा लेता है। कवि इन भ्रष्ट लोगों से शब्दों के द्वारा ही नहीं वरन् प्रत्यक्ष रूपसे दो–दो हाथ करने को आतुर हो उठता है। उसकी दृष्टि में सदियों पूर्व राम ने रावण का वध भले ही कर दिया हो लेकिन इस भ्रष्ट व्यवस्था में तंत्र को चलाने वाले तंत्रियों के रूप में वह रावण आज भी हमारे समाज में जीवित है। यथा –

रामराज में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है।

सूरत शकल वही है भैया बदला केवल ढाँचा है।[9]

दरअसल नागार्जुन अपनी कविताओं में शब्दों की जैसी आग पैदा करते हैं वह आग आम आदमी को संघर्ष की प्रेरणा तो देती है उसकी राख में बची चिंगारी की तरह वह शोषित वर्ग के सीने में तब तक सुलगती रहती है जब तक वह अपने अधिकारों का या तो प्राप्त नहीं कर लेता या फिर उसे प्राप्त करने के लिए क्रांति के रूप में उसे परिवर्तित नहीं कर लेता।

नागार्जुन अपनी भाषा और भाव के सहारे एक ऐसा संसार खड़ा कर देते हैं जो सामान्य भाषा के माध्यम से खड़ा कर पाना सहज नहीं होता। उनकी भाषा ही उनके यथार्थ की अभिव्यक्ति को प्रखरता प्रदान करती है। आमतौर पर शुद्ध एवं परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग करने वाले कवि को श्रेष्ठ माना जाता है लेकिन भाषा और भाव के स्तर पर नागार्जुन परम्परागत भाषा का विरोध करते दिखाई देते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में भाषा में भिन्न प्रयोग किए हैं। 'बादल को घिरते देखा है' या 'कालिदास सच–सच बतलाना' जैसी कविताओं में भावों का जैसा रूप है वैसा 'हरिजन गाथा' में नहीं। यथानुरूप अपनी भाषा के अन्तर्गत वे प्रयोगों के द्वारा कभी तत्सम युक्त परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग करते हैं तो कभी आम आदमी के ज़हन में उतर जाने वाली सहज और सरल भाषा का। लेकिन दोनों प्रकार की भाषाओं में जहाँ कवि भावों का ध्यान रखता है वहीं उनके व्यंग्य और विरोध के स्वरों का पैनापन कहीं भी क्षीण नहीं होता।

नागार्जुन अपनी कविता में आवश्यकतानुसार अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषा के शब्दों

को सहज रूप से स्वीकार कर लेते हैं। उनके लिए भाषा का परिनिष्ठित रूप कविता में व्याप्त भावों को उभार पाने में उतना समर्थ नहीं होता जितना कि शब्दों की मारक क्षमता – इसीलिए उनकी कविताओं की भाषा भावानुकूल अत्यन्त ही मारक है। यथा –

'सोचता हूँ भविष्य का मानव

इण्टर–कॉण्टिनेण्टल होगा – भविष्य की

मानवी यूनिवर्सल होगी और

तब, आज के साहित्य की

प्रासंगिकता टिक पाएगी क्या?'[10]

इस तरह नागार्जुन अपनी भाषा और भावभूमि के सहारे आम जनता के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। जिस जन की पीड़ा को उन्होंने वाणी दी उसी जन ने ही नागार्जुन को 'जन कवि' की उपाधि से सुशोभित किया। उनके समूचे काव्य में यही आम जन बार–बार उठकर खड़ा हो जाता है। कभी इस आम जन का मोह, कहीं इसके दुःख और करुणा को कवि अभिव्यक्ति देता है तो कभी इस आम–जन के शोषण करने वाले पूँजीपतियों और राजनीतिज्ञों से सीधे–सीधे चुनौती भरे स्वरों में संवाद करता है। नागार्जुन अपनी कविताओं के माध्यम से समाज मे सामने ऐसे अनेक सवाल खड़े कर देते हैं जिनके उत्तर नागार्जुन के शब्द नहीं वरन् उनके शब्दों में विद्यमान व्यंग्यार्थ, प्रतीकार्थ देते हैं लेकिन वे अर्थ इतनी सहजता से आम आदमी के सामने उभर आते हैं जिससे वह विद्रोह और आक्रोश के द्वारा अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो उठता है। विरोध और विद्रोह की यह आग ही जनकवि नागार्जुन की कविताओं में हमेशा धधकती रहती है।

संदर्भ

1. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 32
2. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 54
3. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 62
4. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 130
5. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 88
6. परमानंद श्रीवास्तव, नई कविता का परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 31
7. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 52
8. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 128
9. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 132
10. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 142

Copyright © 2015, Dr.Priyanka Mishra. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.